Nai Duniya Edition Delhi 27.12.2011 Page 9

सीबीआई के प्रति नजरिए में बदलाव की जरूरत

अश्विनी कुमार
पूर्व निदेशक सीबीआई

सीबीआई की तुलना हम अमेरिका की एफबीआई से करते हैं। इसके अलावा दुनिया के किसी भी देश के पास इस तरह की जांच एजेंसी की व्यवस्था नहीं है। ब्रिटेन में भी स्काटलैंड यार्ड है लेकिन वह भी स्थानीय पुलिस जैसी है। उसके पास समन्वय आदि की जिम्मेदारी नहीं है। वह राष्ट्रीय स्तर की एजेंसी भी नहीं है। इसलिए कहा जा सकता है कि एफबीआई के बाद केवल सीबीआई ही उसके समानांतर संस्था है।

ढांचा

एफबीआई निदेशक की नियुक्ति अमेरिका के राष्ट्रपति करते हैं। निदेशक दस साल के लिए नियुक्त होता है और वहां की न्यायपालिका के प्रति जवाबदेह होता है। उसकी नियुक्ति के लिए एक स्क्रीनिंग कमेटी होती है जो संभावित निदेशक की चयन की प्रक्रिया को पूरा करती है। यह तरीका बेहद पारदर्शी और उत्कृष्ट होता है। एक बार एफबीआई का निदेशक चुन लिए जाने के बाद उसे हटाना बहुत आसान नहीं होता। भारत में भी सीबीआई का ढांचा बहुत उम्दा है।यहां भी निदेशक के चयन की प्रक्रिया है। इतना जरूर है कि अमेरिका की एफबीआई की तुलना में हमारी सीबीआई के अधिकार, स्वायत्तता तथा जांच की स्वतंत्रता कम है। जबकि जवाबदेही अधिक है।

सीबीआई सरकार के अधीन

अमेरिका में एफबीआई हो या ब्रिटेन की स्काटलैंड यार्ड दोनों सरकार के ही अधीन हैं। एफबीआई के निदेशक की नियुक्ति राष्ट्राध्यक्ष ही करते हैं। वह भी सरकार के अधीन होता है। इसलिए सीबीआई लोकपाल के दायरे में रहे या सरकार के या फिर किसी अन्य के, इससे क्या फर्क पड़ता है। सीबीआई की अपनी स्वतंत्रता, स्वायत्तता है। जांच करने का तरीका है और जांच एजेंसी प्रोफेशनल तरीके से अपने दायित्व को पूरा करती है। उसी सरकार द्वारा गठित सीएजी पर लोगों को विश्वास है। चुनाव आयोग के चुनाव आयुक्तों का चुनाव भी सरकार करती है। वही राजनेतृत्व उन्हें भी चुनता है और लोगों को उस पर भरोसा है। जबकि लोगों को प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, मंत्रियों और नेताओं(सांसदों, विधायकों) पर भरोसा नहीं है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से ज्यादा प्रिंट पर भरोसा है। यह सोचने वाली बात है। दरअसल यह लोगों के नजरिए पर सवाल उठाती है। खराब सीबीआई नहीं है, बल्कि जरूरत लोगों को अपना नजरिया बदलने की है। जब तक नजरिया नहीं बदलेगा तब तक सीबीआई में चाहे जितने बदलाव कर लीजिए और जांच एजेंसी को चाहे जिसके अधीन कर दीजिए कुछ दिन बाद दशा फिर वही हो जाएगी।

पिछले दो-तीन दशक

सीबीआई के लिए पिछले दो-तीन दशक अच्छे नहीं रहे। 15-18 साल से इसकी छवि खराब होने के आरोप लगने लगे। उच्चतम न्यायालय ने जब विनीत नारायण मामले में निर्णय दिया था और सीबीआई को लेकर दिशा-निर्देश जारी किए थे लोगों को लगा था सबकुछ अब ठीक हो जाएगा। लेकिन फिर हालात जस के तस बन गए हैं। हमें यह सोचना होगा कि आखिर कैसे सब ठीक होगा और कौन है इसकी असली जड़? कह दिया जाता है कि सीबीआई सरकार के दबाव में काम करती है। दबाव तो हर जगह, हर विभाग में होता है। लेकिन यह लीडरशिप तय करती है कि उसकी प्रतिबद्धताएं क्या हैं और कैसे आगे बढ़ना है।

फिर दोषी कौन

सीबीआई प्राथमिकी दर्ज करती है, जांच करती है और इसके बाद मामला अदालत में जाता है। अदालत में जाते ही लंबा लटक जाता है। अदालत के हाथ में तो सीबीआई को भी फटकार लगाने का पूरा अधिकार है। जांच से सहमत न होने पर फिर से जांच का आदेश देने का अधिकार है लेकिन न्यायपालिका पर कब अंगुली उठती है? टू संचार घोटाले के ही फेर में पूर्व केंद्रीय मंत्री सुखराम के खिलाफ मामला चल रहा है। वह कभी जेल के भीतर जाते हैं और कभी बाहर आ जाते हैं। अभी तक उन्हें सजा नहीं हो पाई? गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी का मामला भी उच्चतम न्यायालय में चल रहा है। उच्चतम न्यायालय क्यों नहीं कह देता कि सीबीआई के पूर्व निदेशक राघवन की रिपोर्ट खराब है? लालू प्रसाद यादव को आखिर किसने छूट दे रखी है। मेरे ख्याल में इसमें तो कहीं भी सीबीआई नहीं है।

मुलायम सिंह यादव के खिलाफ मामला कहां अटका है, उ.प्र. की मुख्यमंत्री मायावती का मामला क्यों नहीं आगे बढ़ रहा है? पूर्व प्रधानमंत्री वीपी सिंह जेब से कागज निकालकर दिखाते थे और 15 दिन के भीतर बोफोर्स मामले का सबूत सामने ला रहे थे, संसद में सांसदों ने सवाल पूछने के पैसे ले लिए और सजा के नाम पर उन्हें केवल सदस्यता से वंचित कर दिया गया। आखिर यह कौन सी सजा थी? सजा तो जेल की होती है। टू-जी मामला ही लीजिए। एक पूर्व केंद्रीय मंत्री जेल में हैं, बड़े-बड़े उद्योगपति जेल में हैं। आखिर किसकी जांच पर हैं। अब चिदंबरम का ही मामला लीजिए। आखिर सरकार कैसे कह देगी कि उसका गृह मंत्री या तत्कालीन वित्त मंत्री खराब है। पूरा मामला न्यायालय में विचाराधीन है। न्यायालय देखे, गौर करे, निर्दोष करार दे। दरअसल, हमारी न्यायपालिका में कई छेद हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय से लेकर उसकी लखनऊ बेंच तक कई रूप देखने को मिल जाते हैं। जजों के भ्रष्टाचार की भी खबरें आने लगी हैं। जस्टिस कपाड़िया जैसे मुख्य न्यायाधीश के हाथ में देश की न्याय व्यवस्था है। वह एक अच्छे न्यायाधीश हैं। आखिर ऐसे कितने लोग आए। टीएन शेषन चुनाव आयुक्त बने थे, आखिर उनमें क्या ऐसा था कि अकेले दम पर चुनाव आयोग को सजीव बना दिया। सुधार प्रक्रिया आगे बढ़ गई।

- एफबीआई के बाद केवल सीबीआई ही उसके समानांतर संस्था
- एफबीआई की तुलना में ब्यूरो के अधिकार स्वायत्तता तथा जांच की स्वतंत्रता कम
- सीबीआई को भी 5-6 अच्छे और तेज-तर्रार, प्रतिबद्ध निदेशकों की जरूरत

उपाय

सीबीआई हो या कोई और संस्था।सुधार बदलाव करने से नहीं ठोस लीडरशिप से आता है। सीबीआई को भी 5-6 अच्छे और तेज-तर्रार, प्रतिबद्ध निदेशकों की जरूरत है। लीडरशिप से ही सब कुछ तय हो जाता है। जैसे टीएन शेषन ने लोगों की चुनाव आयोग के प्रति अवधारणा बदल दी। जैसे जस्टिस कपाड़िया के प्रयासों से लोगों की सोच बदल रही है। अमेरिका में जज के चयन के लिए स्क्रीनिंग कमेटी लोगों का चयन करने के बाद उन वैकल्पिक नामों को सार्वजनिक करती है। उन पर लोगों से शिकायतें मंगाई जाती है और जिनके खिलाफ गंभीर आरोप मिलते हैं वह दौड़ से बाहर हो जाते हैं। मेरे ख्याल में यहां भी संस्थाओं के सुधार के लिए कुछ इसी तरह के प्रयास होने चाहिए। निष्पक्षता, पारदर्शिता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। हमें यह समझ में नहीं आता कि सीबीआई तो लोकपाल के दायरे में लाने की बात की जाती है लेकिन न्यायपालिका समेत अन्य क्षेत्र क्यों नहीं? दरअसल जरूरत मजबूत लीडरशिप के साथ-साथ पारदर्शी प्रयास की भी है। इसी के साथ जरूरत लोगों को अपना नजरिया बदलने की भी है।